श्रीकृष्ण प्रकृति से परे, नित्य अपनी अंतरंगा शक्ति में स्थित हैं। जीवात्मा नित्यबद्ध और नित्यमुक्त, इन दो श्रेणियों में प्रकट हैं। जीवात्मा असंख्य हैं और उन्हें श्रीभगवान् का भिन्न-अंश माना जाता है। अपरा प्रकृति चौबीस तत्त्वों के रूप में प्रकट है। सनातन काल के द्वारा सृष्टि होती है और सृजन-प्रलय बहिरंगा शक्ति (अपरा प्रकृति) का कार्य है। इसी कारण यह प्राकृत सृष्टि पुनः-पुनः प्रकट-अप्रकट होती रहती है।

भगवद्गीता में श्रीभगवान्, अपरा प्रकृति, जीवात्मा, सनातन काल और कर्म—इन पाँच प्रधान तत्त्वों का निरूपण है। इनमें से अन्य चारों तत्त्व भगवान श्रीकृष्ण के आधीन हैं। भगवान् के ज्ञान में निर्विशेष ब्रह्म, एकदेशीय परमात्मा, आदि परमसत्य की सभी धारणाओं का समावेश है। यद्यपि बाह्य दृष्टि से भगवान् , प्रकृति, जीव और काल भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं; वास्तव में कुछ भी परमसत्य से भिन्न नहीं है। परन्तु साथ में, परमसत्य अन्य सब से सदा भिन्न है। इसीलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु का दर्शन 'अचिन्त्यभेदाभेद' कहलाता है। यह दर्शन ही परमसत्य का पूर्ण ज्ञान है।

जीवात्मा अपने आदिस्वरूप में शुद्ध आत्मतत्त्व है। वह तत्त्वतः परमात्मा-स्वरूप श्रीभगवान् का अणु-अंश है। परन्तु उस को श्रीभगवान् की तटस्था शक्ति कहा जाता है, क्योंकि उसमें परा और अपरा, दोनों ही शक्तियों के संग में आने की प्रवृत्ति रहती है। भाव यह है कि जीवात्मा श्रीभगवान् की दोनों शक्तियों के मध्य में स्थित है। परा शक्ति का अंश होने के कारण उसे अणुमात्र स्वतन्त्रता भी है। उस स्वतन्त्रता के सदुपयोग से वह साक्षात् श्रीकृष्ण के आदेश में आ जाता है। इस प्रकार उसे ह्लादिनी शक्ति में अपनी स्वरूपभूत स्वाभाविक स्थिति प्राप्त हो जाती है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

इति भक्तिवेदान्त भाष्ये अष्टादशोऽध्यायः।।